उपनिषदों में जीवात्मा व परमात्मा का स्वरूप

जयप्रकाश कंसवाल

विभागाध्यक्ष , योग विभाग, पण्डित ललित मोहन शर्मा परिसर ऋषिकेश.

शोध सार

प्रस्तुत शोध पत्र में आधुनिक युग के योगाभ्यास के औचित्यपूर्ण के साथ मूल औचित्यहीन लक्ष्य को लेकर किया जाना वाला अभ्यास हैं। आधुनिक परम्परा में जहां योग पूरे विश्व भर में योग के सर्वांगीण महत्व को लेकर बडी लोकप्रियता के साथ अपनाया जा रहा हैं जो कि औचित्यपूर्ण है, यह औचित्य केवल आसनों, षटकर्मो तक ही अधिक सीमित हो गया हैं जबकि योगाभ्यास का मूल औचित्य जीवात्मा एव परमात्मा जो कि मूलतः एक ही हैं अज्ञानता के कारण अलग अलग दिखाई पडते हैं के अज्ञानता को हटाना ही पूर्ण औचित्यपूर्ण होना चाहिये। आत्मा एवं परमात्मा को श्रीमदभगवद गीता व अनेकों उपनिषदों ने एक ही स्वीकार करते हुए अपने अपने ढंग से प्रस्तुत किया हैं। योगाभ्यास के मूल लक्ष्य जीवात्मा एवं परमात्मा के के स्वरूप प्रस्तुत कर प्रस्तुत शोध पत्र में योगाभ्यास के स्वरूप को प्रस्तुत करने का प्रयास किया जा रहा हैं। जिसमें श्रीमदभगवद गीता एवं कठोपनिषद, श्वेताश्वतरोपिनषद आदि में जीवात्मा परमात्मा के स्वरूप के ज्ञान को बताने का प्रयास किया गया हैं।

कार्य योजना: जीवात्मा - परमात्मा उपनिषद-श्वेताश्तरोपनिषद, कठोपनिषद आदि एवं श्रीमद्भगवद्गीता।

प्रस्तावना

परम पिता परमेश्वर का ही सनातनी अंश हैं, जिसका वास्तविक स्वरूप सच्चिदानन्दमय हैं, किंतु माया के वश में रहने कारण उसे अपने वास्तविक स्वरूप का ज्ञान ही नही हो पाता हैं। इस अज्ञानता के कारण दोनों को अलग समझ लेता हैं। परमात्मा आनन्दमय हैं, नित्य, अनादि, अनन्त हैं। यह सर्वशक्तिमान, सर्वस्वरूप, सबके परम कारण तथा सर्वव्यापी हैं। सांसारिक विषयों को ग्रहण करने वाली इन्द्रियों की वही पचुंच नही हो पाती हैं। इसी प्रकार जीवात्मा या आत्मा भी अनादि हैं, जो कि परमात्मा का ही अंश हैं किंतु ससीम अर्थात सीमित क्षेत्र वाला हैं। श्रीरामकृष्ण परमहंस जी के अनुसार जिस प्रकार पानी व बुलबूला एक ही बुलबुला पानी से उत्पन्न होता हैं, पानी में ही रहता हैं और अन्ततः पानी में ही विलीन हो जाता हैं ठीक उसी प्रकार जीवात्मा व परमात्मा वस्तुतः एक ही हैं। अन्तर केवल सीमितता व असीमतता का हैं।

जीवात्मा का स्वरूप व परमात्मा का स्वरूप

आधुनिकता में अत्याधुनिक संसाधनों से युक्त होन के पश्चात भी जीवात्मा एवं परमात्मा के स्वरूप को मूल रूप को स्थापित नही किया जा सके हैं क्योंकि यह इतना सूक्ष्म एवं अनुभवगम्य साधना है कि आधुनिक विज्ञान इसमें अभी सफल नही हो सका है जिसके लिये हमें बार बार सनातनी संस्कृति की धरोहर वेद, उपनिषदों का अध्ययन करना ही पडता है। जन साधारणतया आत्मा एवं परमात्मा के सन्दर्भ में अपनी अपनी दृष्टि के अनुसार जीवात्मा एवं परमात्मा को निम्नलिखित रूप से समझती है।

1. जीवात्मा सुक्ष्म शरीर है जबकि परमात्मा ईश्वर है।
2. जीवात्मा वह है जो कि सूक्ष्म है परम सत्य है अन्तत इसे परमात्मा में मिलना है।
3. जीवात्मा व परमात्मा एक ही है।
4. जीवात्मा व परमात्मा अलग अलग है।
5. जीवात्मा सीमित तथा परमात्मा असीमित है।
6. जीवात्मा शरीर तथा परमात्मा ईश्वर है।
7. जीवात्मा व परमात्मा का मिलन मृत्यू के उपरांत ही संभव है।
8. जीवात्मा प्राण है जबकि परमात्मा से ही प्राण है।

श्रीमदभगवद गीता एवं उपनिषदों में जीवात्मा व परमात्मा का स्वरूप

जीवात्मा व परमात्मा में अज्ञानवश भेद समझने वाले मनुष्य को इस अज्ञान के नाश के लिये योग साधना में निरंतर योगाभ्यास में बिना संशय के रत रहना चाहिये जिससे वह देह में स्थित जीवात्मा को परमेश्वर का ही सनातनी स्वीकार कर सके। यही जीवात्मा त्रिगुणमयी माया से स्थित रहकर इन्द्रियों तथा मन को प्रेरित करता है।

ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।।

रामचरित मानस कथनानुसार कि -

ईश्वर अंश जीव अविनाशी। चेतन अमल सहज सुखराशी।।

सो मायावश भयउ गुसाई। बन्ध्यो कीट मरकट की नांइ।।

उपनिषदों का भी यही निर्णय है कि यह आत्मा अजर अमर एवं नित्य ज्ञानस्वरूप है। न जायते म्रियते वा विनश्चिन्नायं, कुतश्चिन्न बभूव कश्चित। अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो, न हन्यते हन्यमाने शरीर।। के अनुसार नित्य ज्ञानस्वरूप यह आत्मा न तो जन्म लेता है, और न ही यह मरती है। यह न स्वयं कभी किसी से हुआ है और न इससे कोई भी हुआ है। अतः यह कार्य कारण से भी परे है। यह आत्मा अजन्मा है, नित्य है, सदा एक समान रहने वाला है तथा क्षय वृद्धि से रहित है। शरीर के नाश किये जाने पर भी इसे मारा अथवा नष्ट नही किया जा सकता है। न जायते म्रियते न कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूयः। अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणों, न हन्यते हन्यमाने शरीरे। अथार्त यह आत्मा किसी काल में भी न तो जन्मता है

और न मरता ही है तथा न यह उत्पन्न होकर फिर होने वाला ही है क्योंकि यह अजन्मा, नित्य सनातन तथा सर्वथा पुरातन है। और शरीर के मर जाने पर भी यह नही मरता है। उपनिषदों में श्वेताश्वतरोपनिषद अंगुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः, संकल्पाहंकारसमन्वितो यः। वृद्धेर्गुणात्मगुणेन चैव, आराग्रमध्यो ह्यपरोऽपि दृष्टः।। बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च। भागो जीवः स विज्ञेयः स च अनन्ताय कल्पते।। नैव स्त्री न पुमान चैव न चैवायं नपुंसकः।यद्यच्छरीममादत्ते तेन तेन स युज्यते।-अर्थात जीवात्मा अंगुष्ठमात्र परिमाण वाला और सूर्य के समान प्रकाशमय है। वह सकंल्प और अहंकार से युक्त हो रहा है। अतः संकल्परूप् बुद्धि के गुण से तथा अहंता ममता रूप अपने गुणों से संबद्व होने के कारण यह सुई की नोक के समान सूक्ष्म आकार वाला है। परमात्मा से भिन्न इस प्रकार का भी जीवात्मा का स्वरूप ज्ञानीजनों द्वारा देखा गया है। जीवात्मा के सन्दर्भ में विद्वजनों का मत है कि जीवात्मा का स्वरूप इतना सूक्ष्म है बाल की नोंक के सौवें भाग के फिर सौ भाग कर दिये जाने पर जो एक भाग होता है उसी के बराबर जीवात्म का स्वरूप होना चाहियं। इतना सूक्ष्म होने पर वह असीम होने में समर्थ है।

यह जीवात्मा न तो महिला है और न ही वह पुरुष है नपुसंक तो वह हो भी नही सकता है। इस भाव से वह जिस शरीर को

ग्रहण करता है उस शरीर वाली वह जीवात्मा हो जाती है। कठोपनिषद के प्रथम अध्याय तृतीय बल्ली के प्रथम मन्त्र में कहा गया है -कि जीवात्मा और परमात्मा ये दोनों ही मानव शरीर में बुद्धिरूपी गुफा में छिपे हुये हैं और धूप एवं छाया के समान सदैव साथ रहते हुए भी एक दूजे के बिल्कुल विपरीत है। जहां जीवात्मा छाया के समान अल्प प्रकाश के साथ अल्पज्ञ है वहीं दूसरी ओर परमात्मा धूप के समान पूर्णप्रकाश एवं सर्वज्ञ हैं। जिसे प्रकार छाया जीवात्मा का अल्पज्ञान भी उसका स्वयं का नही होता है प्रत्युत विज्ञानस्वरूप उस परमेश्वर का ही रहता है।

(द्वा सुपर्णा सयुजा सुखया, समानं वृक्षं परिषस्वजाते।

तरोरन्यः पिप्लं स्वाद्वत्य नश्नन्यो अभिचाकशीति।।)

के अनुसार यह समझाने का प्रयास किया गया है कि सर्वथा सदैव साथ साथ रहने वाले तथा परस्पर मित्रता रखने वाले जीवात्म एवं परमात्मा रूप के दो पक्षी एक ही शरीररूपी वृक्ष पर हदय रूपी घोंसले में साथ साथ निवास करते हैं। उनमें से एक तो उस वृक्ष के फलों का रसास्वादन करता रहता है जबकि दूसरा उनको देखते रहता है किंतु उपभोग नही करता है। अर्थात जीवात्मा तो हर्ष, शोक का अनुभव करता हुआ कर्मफलों को भोगता है जबकि दूसरा पक्षीरूप परमात्मा इस शरीर में प्राप्त हुए सुख दुःखों को भोगता नही है अपितु केवल द्रष्टा मात्र बना रहता है।

गीता के पन्द्रहवे अध्याय में प्रकृति और जीवात्मा को क्षर अक्षर नामों से वर्णित किया गया है, तथा परमात्मा को पुरुषोतम कहा गया हैः-द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च। क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।।

उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः। यो लोकत्रयमाविश्य विभत्र्यव्यय ईश्वरः।।

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः। अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।।

ईश्वर कहते हैं कि - इस संसार में क्षर व अक्षर ये दो ही प्रकार के पुरुष हैं जिनमें सम्पर्ण प्राणियों के भौतिक शरीर तो क्षर अर्थात नाशवान है तथा जीवात्मा अक्षर अर्थात अविनाशी सदैव रहने वाला कहा जाता है। उन दोनों में से भी उत्सम पुरुष तो अन्य ही कोई है जो कि तीनों लोकों में व्याप्त होकर सबका भरण पोषण कर रहा है। और क्योंकि मैं परमेश्वर नाशवान क्षेत्र से तो सर्वथा अतीत हूं और माया में स्थित जीवात्मा से भी उत्तम हंू। इसलिये तीनों लोकों में और वेदों में पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्व है। जीवात्मा को परमेश्वर से दूर रखने वाली और जीव को बन्धन में डालने वाली इन दोनों के बीच एक तीसरी शक्ति काम करती है। जिसे शास्त्रों में कहीं तो प्रकृति कहा गया है तथा कहीं कहीं पर ईश्वर की अव्यक्त माया के रूप में स्वीकार किया गया है। तुलसीदास जी ने रामचरित मानस में बडे ही सरल शब्दों में माया का स्वरूप इस प्रकार से बताया गया है। मैं अरू, तोर तें माया। जा वश कीन्हें जीव निकाया।।

वास्तव में व्यावहारिक रूप से अंह, मातृत्व राग द्वेष आदि ही माया के धर्म हैं। इनसे जकडे होने कारण ही जीव परमार्थ से भटका रहता है। जीव इस माया से किस प्रकार प्रभावित रहता है ? जिसे बताते हुए श्रीमदभगवद गीता कहती है कि -

त्रिभिर्गुणमयैर्भाव सर्वमिदं जगत। मोहिता नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम।।

दैवी ह्येषा गुणमयी म ममाया दुरत्यया। मामैवं ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।।

न मां दष्कृतिपससे मूढाः प्रपद्यन्तें नराधमाः। माययापहृतस्सपस आसुरं भावमाश्रिताः।।

गुणों के कार्यरूप सात्विक, राजस, तामस इन तीनों प्रकार के भावों से अर्थात राग द्वेष आदि विकारां से यह सारा संसार मोहित हो रहा है। इसलिये मनुष्य इन तीनों गुणों से अतीत मुझ अविनाशी परमेश्वर को तत्व से नही जानता है। क्योंकि मेरी यह त्रिगुणी योगमाया बडी दुस्तर है, परन्तु जो व्यक्ति मुझे ही निरंतर स्मरण करते हैं या जो केवल मेरे में रमते हैं वे इस माया से पार पा जाते हैं। माया द्वारा हरे हुए ज्ञान वाले और आसुरी स्वभाव को धारण किये हुये दुराचारी नीच मनुष्य मुझ परमेश्वर को नही भजते हैं। महर्षि पंतजली कृत योगदर्शन में इस माया के लिये दश्य शब्द का प्रयोग किया गया है जिसे-

प्र का श क्रि या स्थि त ति शी लं भतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थ दश्यम।। 2/8

के रूप में इस प्रकार से समझाया गया है कि प्रकाश, क्रिया और स्थिति जिसका स्वभाव है, पंचमहाभूत, इन्द्रियां, मन, बुद्धि, एवं अहंकार जिसका स्वरूप है, जीवात्मा के लिये भोग और मुक्ति का सम्पादन करना ही जिसका प्रयोजन है, वही दश्य है।

इस प्रकार से सत्व, रज, और तम यह तीनों गुण और इनका जो कुछ भी कार्य दिखाई, सुनाई अथवा समझने में आता है, वह सभी दश्य की परिसीमा में ही आता है।

मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम।

तस्याः अवयवभतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत।। माया तो प्रकृति को समझना चाहिये और परमेश्वर को मायापति समझना चाहिये। उस परब्रह्म की

शक्तिरूपा प्रकृति के ही अंगभूत कार्य कारण समुदाय से यह सारा जगत व्याप्त हो रहा हैं। जीवात्मा का यथार्थ स्वरूप विज्ञानमय हैं किन्तु उस परमेश्वर की त्रिगुणमयी मायाशक्ति ये मोहित होकर वह नाशवान शरीर एवं इन्द्रिय समुदाय के धर्मो को अपने में आरोपित करके स्वयं को सुखी अथवा दुखी अनुभव करता हैं। जीव की यह विवशता ही उसकी वृद्धावस्था हैं। जब वही जीव उन कणानिधान परमेश्वर की अहैतुकी कृपा से अपनी इन्द्रियां, मन तथा बुद्धि को बाह्र विषयों से हटाकर अन्तर्मुखी बनाता हैं तो अपने उस शाश्वत मित्र आनन्द के सागर परमेश्वर को पाकर आनन्द में निमग्न हो जाता हैं। और यही जीव की मुक्तावस्था हैं।

समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नो, अनीशया शोचति मुह्रमानः।।

जुष्टं यदा प्यत्यन्यमीश मस्य महिमानमिति वीतशोकः।।

अर्थात- शरीर रूपी एक ही वृक्ष पर हृदय रूपी घोंसले में सदा साथ रहने वाला जीवात्मा गहरी आसक्ति में मग्न रहता हैं। अतः वह असमर्थ होने के कारण दीनतापूर्वक मोहित हुआ शोक करता रहता हैं। जब भगवान की दया से योगियों द्वारा सेवित अपने से भिन्न परमेश्वर को और उसकी आश्चर्यमयी महिमा को प्रत्यक्ष देख लेता हैं, तब वह सर्वथा शोकरहित हो जाता हैं।

संयुक्तमेतत क्षरमक्षरं च, व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः।

अनीशश्चात्मा बध्यते भेक्तृभावात, ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः।।

विनाशशील प्रकृति और अविनाशी जीवात्मा इन दोनों के संयोग से बने हुए व्यक्त और अव्यक्त स्वरूप इस विश्व को परमेश्वर ही भरण और पोषण करते हैं तथा जीवात्मा सांसारिक विषयों का भोक्ता बना रहने के कारण प्रकृति के अधीन असमर्थ होकर उसमें बंध जाता हैं और वही जीवात्मा परमेश्वर को जान लेने के बाद सभी प्रकार के बन्धनों से मुक्त हो जाता हैं।कठोपनिषद में जीव के बन्धन का कारण इस प्रकार से स्पष्ट किया गया हैं कि -

(पराञ्चि खानि व्यतुणत स्वयंभू, तस्मात्पराङ पश्यन्ति नान्तरात्मन। कश्चिद्धीरः व्रत्ष्णसत्मसनमैक्ष, दावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन।।

अर्थात परमेश्वर ने आंख, कान, त्वचा, जिह्रवा आदि सभी इन्द्रियों के द्वार बाहर की ओर देखने वाले बनाये हैं। इसलिये मनुष्य इन इन्द्रियों के द्वारा बाहरी वस्तुओं को ही देख पाता हैं किंतु अपने भीतर स्थित परमात्मा की ओर नही देखता ह।। कोई बिरला ही भाग्यवान साधक अथवा मनुष्य ऐसा होता हैं जो कि अमर पद को पाने की चेष्टा रखता हैं और अपनी चक्षु आदि इन्द्रियों को बाहर के विषयों से हटाकर उन्हें अन्नमुखी बनाकर उस अन्तर्यामी परमात्मा को देखता हैं। अब सहज एवं स्वाभाविक जिज्ञासा अथवा प्रश्न उठ खडा होता हैं कि परमात्मा कैसे हैं, तथा उस परमात्मा को प्राप्त करने की विधि क्या हैं ? उन्हें प्राप्त करने से क्या होगा ? जिसके सम्बन्ध में कठोपनिषद ने सहज व सटीक उत्तर में कहा -

अङ्गुष्ठमात्रपुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः।

ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः।।

अर्थात- यमराज नचिकेता को उसके परमात्मत्त्व सम्बन्धी प्रश्न का उत्तर देते हुए कहा हैं कि अंगुष्ठ मात्र परिमाण वाले परम पुरुष परमात्मा धूम रहित निर्मल ज्योति के समान हैं। वे भूत, वर्तमान, एवं भविष्य पर शासन करने वाले हैं। सांसारिक ज्योतियों में धूमरूप दोष होता हैं किन्तु वे धूमरहित, उष्णतारहित एवं सर्वथा विशुद्व हैं। अन्य ज्योतियों घटती एवं बढती रहती हैं तथा समय आने पर वे स्वयमेव बुझ जाती हैं, किंतु वे परमात्मा जैसे आज हैं वैसे ही कल भी रहेंगे। वे परमात्मा को सूक्ष्म से सूक्ष्मतम एवं महान से महानतम मानते हैं अर्थात संसार का सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थ भी उनकी तुलना में स्थूल ही बना रहता हैं तथा महानता में वे इतने महान हैं कि समस्त ब्रह्माण्ड में छाये हुये हैं। वे जीवात्मा के अत्यन्त निकट होने पर भी बहुत दूर हैं, अर्थात उसे दृष्टिगोचर नही होते हैं। इस प्रकार वे परमात्मा आश्चर्यमय हैं। वे स्वयं तो आश्चर्यमय हैं ही किंतु उन्हें जानने वाला और जनाने वालो ये दोनों भी आश्चर्यमय हैं, क्योंकि पहले तो उस तत्व के यथार्थवेत्ता अनुभवी पुरुष ही दुर्लभ हैं और फिर आत्मदर्शी महापुरुषों से उपदेश पाकर भी उस पर मनन, निदिध्यासन करते हुये आत्मसाक्षात्कार कर लेने वाले व्यक्ति भी विरले ही होते हैं। इसलिये बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिये कि वह पहले तो अनुभवी महापुरुषों से इस विषय को श्रद्धापूर्वक सुन, फिर उस पर मनन करे और फिर योगपरायण होकर आत्मतत्व को जानने का प्रयत्न करें। क्योंकि योगपरायण व्यक्ति ही उस तत्व को पाने का अधिकारी हैं।

कठउपनिषद के अनुसार-

तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्टं, गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम।

अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं, मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति।।

जो सर्वव्यापी परमात्म योगमाया के पर्दे में छिपा रहता हैं, जो सबके हृदयरूपी गुफा में स्थित रहने के कारण संसाररूपी सघन जंगल में रहने वाला हैं तथा पुराण पुरुष हैं, ऐसे उस कठिनता से देखे जाने वाले योग्य परमात्मदेव को निरन्तर ध्यानाभ्यास में लगा रहने वला साधक ही प्राप्त कर सकता हैं तथा उसे पाकर सदा के लिये हर्षशोक से मुक्त हो जाता हैं इसी उपनिषद में वर्णित हैं -

न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य, न चक्षुषा पश्यन्ति कश्चनैनम,।

हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो, य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति।।

उन परमेश्वर का दिव्यस्वरुप प्रत्यक्ष विषय के रुप में सामने नही ठहरता और उस दिव्यरुप को कोई भी मनुष्य अपने प्राकृत चर्म चक्षुओं द्वारा नही देख पाता हैं। मन में बार बार चिन्तन करके ध्यान में लाया हुआ वह परमात्मा निर्मल तथा विशुद्व तथा विशुद्व बुद्धि के द्वारा ही दृष्टिगोचर होता हैं। जो साधक इन परमेश्वर को जान लेते हैं, वे परमानन्द स्वरुप बन जाते हैं। साधनपरायण संयमी व्यक्ति ही उन परमात्मदेव को जन सकता हैं किंतु ऐसा व्यक्ति जो विषयालोलुप होकर इन्द्रियों का दास बना रहता हैं और मनमाना आचरण करता हैं तथा जिसका अन्तःकरण पवित्र नही होता हैं वह परमेश्वर को न पाकर जन्म मरण के चक्र में भटकता रहता हैं कठोपनिषद के अनुसार जिस प्रकार से-

यस्त्वविज्ञानवादभत्यमनस्कः सदाशुचिः। न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति।।

यस्तु विज्ञानवान भवति समनस्कः सदा शुचिः। स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद भूयो न जायते।।

विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान नरः। सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम।।

जो मनुष्य सदा विवेकहीन बुद्धिहीन व्यक्ति असंयतचित्त और अपवित्र बना रहता हैं, वह उस परमपद को नही पा सकता हैं। प्रत्युत बारम्बार जन्म मृत्यू संसार चक्र में ही भटकता रहता हैं। ठीक इसके विपरीत जो साधक विवेकशील बुद्धि से युक्त, संयमी और पवित्र रहता हैं, वह परमेश्वर के उस परमधाम को प्राप्त कर लेता हैं जहां से पुनः लौटना नही पडता हैं। जो साधक विवेकशील बुद्धि को अपना सारथी बनाये रखता हैं और मनरुपी लगाम को सावधानी से सम्भाले रहता हैं। वह संसार के कष्टप्रद मार्ग को पार करता हुआ परमब्रह्म परमेश्वर के सर्वोच्च पद को प्राप्त कर लेता हैं।

References

1. (ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः। मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।। गीता 15/7)
2. न जायते म्रियते वा विनश्चिन्नायं, कुतश्चिन्न बभूव कश्चित। अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो, न हन्यते हन्यमाने शरीर।। कठोनिषद 2/2/18
3. (अंगुष्ठमात्रो रवितुल्यरूपः, संकल्पाहंकारसमन्वितो यः। वृद्धेर्गुणात्मगुणेन चैव, आराग्रमध्यो ह्यपरोऽपि दृष्टः।।श्वेताश्वतरोपनिषद 5/8।।)
4. (बालाग्रशतभागस्य शतधा कल्पितस्य च। भागो जीवः स विज्ञेयः स च अनन्ताय कल्पते।।श्वेताश्वतरोपनिषद 5/9)
5. (नैव स्त्री न पुमान चैव न चैवायं नपुंसकः। यद्यच्छरीममादत्ते तेन तेन स युज्यते।। श्वेताश्वतरोपनिष 5/10)
6. (द्वा सुपर्णा सयुजा सुखया, समानं वृक्षं परिषस्वजाते। तरोरन्यः पिप्लं स्वाद्वत्य नश्नन्यो अभिचाकशीति।।) श्वेताश्वतरोपनिषद 4/6
7. द्वाविमौ पुरुषौ लोके क्षरश्चाक्षर एव च। क्षरः सर्वाणि भूतानि कूटस्थोऽक्षर उच्यते।।उत्तमः पुरुषस्त्वन्यः परमात्मेत्युदाहृतः। यो लोकत्रयमाविश्य विभत्र्यव्यय ईश्वरः।।यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः। अतोऽस्मि लोके वेदे च प्रथितः पुरुषोत्तमः।। गीता
8. प्रकाशक्रियास्थेततिशीलं भतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थ दृश्यम।। 2/8 योग सूत्र
9. मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरम। तस्याः अवयवभतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत।। श्वेताश्वतरोपनिषद 4/10।।
10. समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नो, अनीशया शोचति मुह्मानः।।जुष्टं यदा प्श्यत्यन्यमीश मस्य महिमानमिति वीतशोकः।। श्वेताश्तरोपनिषद।।4/7
11. पराञ्चि खानि व्यतुणत स्वयंभू, तस्मात्पराङ पश्यन्ति नान्तरात्मन।कश्चिद्धीरः व्रत्ष्वासत्मसनमैक्ष, दावृत्तचक्षुरमृतत्वमिच्छन।।कठोपनिषद 1/2/1) कठोपनिषद 1/2/1
12. अङ्गुष्ठमात्रपुरुषो ज्योतिरिवाधूमकः।ईशानो भूतभव्यस्य स एवाद्य स उ श्वः।। कठोपनिषद 2/1/12
13. तं दुर्दर्शं गूढमनुप्रविष्ठं, गुहाहितं गह्वरेष्ठं पुराणम।अध्यात्मयोगाधिगमेन देवं, मत्वा धीरो हर्षशोकौ जहाति।। कठोपनिषत 1/2/12
14. न संदृशे तिष्ठति रूपमस्य, न चक्षुषा पश्यन्ति कष्चनैनम,।हृदा मनीषा मनसाभिक्लृप्तो, य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्ति।। कठोपनिषद 2/3/9श्वे0 4/20
15. यस्त्वविज्ञानवादभत्यमनस्कः सदाशुचिः। न स तत्पदमाप्नोति संसारं चाधिगच्छति।।यस्तु ि◌वज्ञानवान भवति समनस्कः सदा शुचिः। स तु तत्पदमाप्नोति यस्माद भूयो न जायते।।विज्ञानसारथिर्यस्तु मनः प्रग्रहवान नरः। सोऽध्वनः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम।।कठोपनिषद 1/3/7-9।।